Prelace



## प्रस्तावना

## राजस्थान के लोकगीतों पर किये गए पूर्ववर्ती कार्यों का संक्षिप्त विवरण ।

## प्रस्तुत अध्ययन की आवश्यकता और उपादेयता ।

भारत में राजस्थान प्रदेश प्राचीन काल से ही कई दृष्टियों से प्रसिद्ध रहा है । यहां के वीर, वीरांगनाओं के अद्भुत त्याग और अतुल शौर्य की गौरवशाली परम्परा विश्व विदित है । यहां की धरती अन्न उपजाने में भले ही कृपण रही हो पर 'वीर-पुंगवों' की जन्म भूमि होने का श्रेय इस भूमि को ही मिला है । आन, मान और श्रृंगार का सुन्दर समन्वय अन्यत्र दुर्लभ है । वीरता यहां के लोगों में कूट-कूट कर भरी हुई है । यहां के जीवन को देखते ही स्पष्ट प्रतीत होता है कि हंसते हंसते अपने प्राणों को उत्सर्ग करने की भावना बालक को मां द्वारा जन्म-घूटी के साथ पिलायी जाती रही । इस प्रदेश के प्रसिद्ध चारण कवि सूर्यमल मिश्रण ने कहा भी है -

इळा न देणी आपरी, हालरिया हुलराय ।
पूत सिखावे पालणें मरण बढ़ाई मांय ।

राजस्थानी वीरों ने मृत्यु में ही जीवन का सदेश सुना है । मरण का महान मंगल-त्यौहार माना है । ऐसे वीरों की प्रशंसा जितनी की जाय, कम है । ये वीर रणक्षेत्र में शत्रुरूपी विकराल काल को नाकों चने चबवाने वाले प्रलयंकर शंकर के अवतार रहे हैं तो रंगमहल में कामदेव के अवतार सिद्ध हुये हैं । यहां की वीर-बालाओं पर - 'वज्रादपि कठोराणि मृदुनि कुसुमादपि' की उक्ति पूर्णरूपेण चरितार्थ होती है । फलत: हम कह सकते हैं कि यहां मुख्यत: दो भाव जीवन को प्रभावित करते रहे हैं, (१) उत्साह (२) प्रेम । यही कारण है कि यहां के साहित्य में भी इन्हीं दो भावों का ~~सम्यक~~ सम्यक् रूपेण प्रतिफलन हुआ है ।

राजस्थानी साहित्य में वीर और श्रृंगार इन दो रसों में ही अधिकतर काव्य सृजना हुई है । यदि हम राजस्थानी लोक साहित्य पर दृष्टिपात करें तो विदित होगा कि लोक-साहित्य में श्रृंगार भाव मुख्य रूप

से वर्णित है । लोक-साहित्य की प्रमुख विधा लोकगीत को यदि श्रृंगार रस-सिक्त गीतों का अक्षय-कोष कह दिया जाय तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी । राजस्थानी लोकगीतों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण संख्या श्रृंगारिक लोकगीतों की प्राप्त हुई है । हमारे शोध-प्रबन्ध का प्रतिपाद्य भी राजस्थान के श्रृंगारिक लोकगीत है अत: आगे के अध्यायों में इन गीतों पर समुचित विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है ।

राजस्थान के श्रृंगारिक लोकगीतों पर विचार करने से पूर्व यह समीचीन प्रतीत होता है कि इस क्षेत्र में अद्यावधि किये गये कार्यों पर प्रकाश डाला जाय ।

राजस्थानी जैन कवि अपने गीत एवं गेयात्मक अन्य रचनाएं प्रचार की दृष्टि से प्रचलित लोक-गीतों की शैली में प्रस्तुत करते रहे हैं । जैन कवियों ने ऐसी रचनाओं के साथ लोक-गीत की प्रथम पंक्ति अथवा शीर्षक का भी प्राय: उल्लेख कर दिया है । इन्हें 'देशी' अथवा 'ढाल' लिखा गया है । मध्यकालीन राजस्थान में मौखिक परंपरा में प्रचलित ऐसे हजारों ही लोक-गीतों का परिचय प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों से उपलब्ध हो जाता है । उदाहरणस्वरूप स्व० मोहनलाल दलीचन्द देसाई ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ ''जैन गुर्जर कवियों'' के तृतीय भाग के परिशिष्ट में प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों में उपलब्ध और जैन रास आदि में प्रयुक्त चौबीस सौ देशियों की अनुक्रमणिका दी है । इस अनुक्रमणिका से ज्ञात होता है कि मध्यकाल में मौखिक रूप में प्रचलित अनेक लोकगीत अब लुप्त हो गये है और सम्बन्धित जैन कवियों की कृपा से ही उनकी प्रथम पंक्ति अथवा शीर्षक के रूप में उनका परिचय मिलता है । राजस्थान के ग्रन्थ-भण्डारों से मध्यकाल में प्रचलित लोकगीतों की परिचायिका ऐसी हजारों ढालों एवं देशीयों का संग्रह कर उनका अध्ययन किया जा सकता है ।

प्राचीनकाल में मुद्रण व्यवस्था के अभाव में अनेक उत्कृष्ट कोटि के ग्रन्थ-रत्न नष्ट हो गये । परन्तु लोकगीत आज भी अपने नैसर्गिक सौन्दर्य को अक्षुण्ण बनाये हुये है क्योंकि यह धरोहर पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित होती रही । इतना अवश्य हुआ है कि इन गीतों में कालानुसार परिवर्तन आता रहा है ।

लोक-साहित्य की ओर विद्वानों ने पहले बहुत कम ध्यान दिया । १८वीं शताब्दी के प्रारम्भ में जब पाश्चात्य देशों में लोक-साहित्य का संग्रह और संकलन प्रारम्भ हुआ तो हमारे यहां भी यह भावना जागृत हुई कि हमें भी अपनी इस अमूल्य निधि को नष्ट होने से बचाना चाहिये । फलस्वरूप इस भावना से प्रेरित होकर कई व्यक्ति इस क्षेत्र में आगे बढ़े । यद्यपि यह कार्य भारत में पश्चिमी देशों की तुलना में बहुत विलम्ब से प्रारंभ हुआ तथापि राजस्थान ने अपने आपको इस क्षेत्र में अग्रणी सिद्ध कर दिया है ।

राजस्थानी लोकगीतों से संबंधित प्रथम महत्वपूर्ण संकलन "मारवाड़ के ग्राम गीत" शीर्षक से श्री जगदीशसिंह गहलोत ने प्रकाशित किया । फिर इस क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य सम्पादक त्रय ने किया - सूर्यकरण पारीक, रामसिंह ठाकुर और नरोत्तम स्वामी द्वारा संग्रहीत गीत 'राजस्थान के लोकगीत' के नाम से प्रकाशित इस पुस्तक में गीतों को विविध शीर्षकों और उपशीर्षकों के अन्तर्गत विभक्त किया गया है । विद्वान सम्पादकों ने स्थान-स्थान पर राजस्थान की लोक-संस्कृति को उद्घाटित करने वाले तत्वों पर भी प्रकाश डाला है । इन सम्पादकों ने यह भी बताया है कि कौनसा-गीत किस समय गाया जाता है ।

इस संबंध में दूसरा उल्लेखनीय प्रयास रानी लक्ष्मी कुमारी चुण्डावत का है । आपने लोकगीतों के ऐतिहासिक पक्ष को उद्घाटित करने का विशेष प्रयास किया है । श्रीमती चुण्डावत ने अपने कई प्रकाशनों में यह संकेत दिया है कि राजस्थान के इतिहास लेखन में अनेक त्रुटियाँ रह गई है, कई घटनायें छूट गई हैं और कई घटनाओं का रूप परिवर्तित कर

दिया गया है इसलिये यह आवश्यक प्रतीत होता है कि लोक-साहित्य और लोकगीतों की सहायता से इतिहास की इन कमियों को दूर किया जाय ।

राजस्थानी लोक-साहित्य में भीली लोक-साहित्य की अपनी महत्ता है । यों तो राजस्थान में बसने वाली विविध जातियों में प्रचलित लोकगीतों में थोड़ा बहुत अन्तर मिलता ही है पर प्रतिपाद्य विषय की दृष्टि से भी भीली लोकगीतों का अपना महत्व है । अत: इस संबंध में अलग से उल्लेख करना आवश्यक है । यद्यपि स्वतन्त्र रूप से किसी विद्वान ने भीली लोकगीतों पर शोध प्रबन्ध नहीं लिखा है पर यदाकदा कुछ न कुछ लिखा जाता रहा है । गिरधारीलाल शर्मा द्वारा सम्पादित `` राजस्थानी भीली गीत`` नामक पुस्तक उदयपुर से प्रकाशित हुई है । इसमें भील-समाज में प्रचलित अनेक लोकगीतों के नमूने मिल जाते हैं । इन गीतों के साथ साथ कठिन शब्दों के अर्थ भी दिये हैं ।

राजस्थानी लोक-साहित्य की अलग-अलग विधाओं पर छिट-पुट रूप में और प्रबन्ध-रूप में काम होता रहा है पर सम्पूर्ण लोक-साहित्य पर कुछ ही शोध प्रबन्ध लिखे गये हैं । जिनमें दो ग्रन्थों के नाम उल्लेखनीय हैं - (१) राजस्थान के लोक-साहित्य - नानुराम संस्कृता द्वारा लिखित और (२) डॉ० सोहनदान चारण का ``राजस्थानी लोक-साहित्य का सैद्धान्तिक विवेचन`` नामक शोध प्रबन्ध । नानुराम संस्कृता ने अपनी पुस्तक में लोकगीतों पर एक स्वतन्त्र अध्याय लिखा है और इस अध्याय में राजस्थानी लोकगीतों के विविध प्रकारों का विवेचन करते हुये लोकगीतों का भाव और कला की दृष्टि से आलोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है । डॉ० सोहनदानजी चारण ने अपनी पुस्तक में राजस्थानी लोकगीतों का अध्ययन प्रेम की कसौटी पर किया है और उन गीतों की सैद्धान्तिक विवेचना की है ।

राजस्थानी लोकगीतों के सम्बन्ध में समय समय पर विविध पत्र-पत्रिकाओं में निबंध प्रकाशित होते रहे हैं । कुछ व्यक्तियों ने इस विषय पर स्वतन्त्र रुप से पुस्तकें और शोध प्रबन्ध भी लिखे जिनमें श्रीमती डॉ० कमला रामावत द्वारा लिखित ``राजस्थानी लोकगीतों में विरह भावना`` नामक ग्रन्थ उल्लेखनीय है । इन्होंने अपनी पुस्तक में राजस्थानी लोकगीतों में भावना को ही प्रधानता दी है ।

राजस्थानी लोक-साहित्य और लोकगीतों को लेकर किये गये उपर्युक्त प्रयत्नों के अतिरिक्त इस संबंध में और भी अनेक प्रयास किये गये हैं । इन प्रयासों में सीताराम लालस द्वारा सम्पादित ``राजस्थानी शबद कोश`` की भूमिका और डॉ० पुरुषोत्तमलाल मेनारिया द्वारा लिखित `राजस्थानी साहित्य का इतिहास ` पुस्तक में लोक-साहित्य नामक अध्याय उल्लेखनीय है । इन दोनों विद्वानों ने लोक-साहित्य का आलोचना परक अध्ययन प्रस्तुत किया है ।

उक्त कार्यों के अतिरिक्त राजस्थान के लोकगीतों पर अनेक विद्वानों द्वारा समय-समय पर कुछ न कुछ लिखा जाता रहा है । इन विद्वानों में सर्व श्री कोमल कोठारी, विजयदान देथा, सौभाग्यसिंह शेखावत, डॉ० नारायणसिंह भाटी, कन्हैयालाल सहल, पतराम गौड़, अगरचंद नाहटा, डॉ० मनोहर शर्मा, देवीलाल सामर, डॉ० महेन्द्र भानावत्, सुश्री सुधाराजहंस, रामप्रसाद दाधीच आदि के नाम उल्लेखनीय हैं । लोकगीत विषयक सामग्री प्रमुख रुप से निम्न पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई हैं - लोकसंस्कृति (बोरुन्दा), परम्परा (जोधपुर), मरुभारती (पिलानी), लोककला (उदयपुर), मरुवाणी (जयपुर), शोधपत्रिका (उदयपुर), लोक-साहित्य (जोधपुर), वरदा (बिसाऊ), रंगायन (उदयपुर), रंगयोग (जोधपुर) । राजस्थान प्रदेश में कई ऐसे संस्थान है जो लोक-साहित्य विषयक सामग्री को एकत्र कर प्रकाशित करने में प्रयत्नशील रहे हैं । इन संस्थानों में मुख्य संस्थानों के नाम इस प्रकार है - (१) रुपायन संस्थान (बोरुन्दा),

(२) राजस्थानी शोध संस्थान (चौपासनी,जोधपुर), (३) भारतीय लोक कला मण्डल (उदयपुर), (४) संगीत नाटक अकादमी (जोधपुर), (५) राजस्थान विद्यापीठ साहित्य संस्थान (उदयपुर) और (६) शार्दूल राजस्थानी शोध-संस्थान (बीकानेर) आदि ।

राजस्थानी लोक-साहित्य के अथाह भंडार को देखते हुए यह स्पष्ट है कि राजस्थानी लोक-साहित्य का विविध दृष्टिकोणों से अध्ययन करने की महती आवश्यकता है । यही विचारकर मैंने अपने शोध-प्रबन्ध के लिये इसी क्षेत्र की एक विधा के एक पक्ष को चुना है ।

राजस्थानी लोकगीतों को लेकर विद्वानों के अध्ययन और विवेचन के अलग-अलग दृष्टिकोण रहे हैं । सभी ने राजस्थानी लोकगीतों को कुछ वर्गों और उपवर्गों में विभक्त करके विवेचन किया है । वैसे सभी विद्वानों के प्रयास सराहनीय है पर यदि इनके द्वारा किये गये विवेचन का सूक्ष्म दृष्टि से अवलोकन किया जाय तो विदित होता है कि समस्त प्रकार के लोकगीतों का एक ही साथ विवेचन हो जाने से समस्त विवेचन सतही हो गया है । सभी प्रकार के लोकगीतों पर विचार करते समय व्यक्ति उसके अन्तर्गत आने वाले सभी वर्गों उपवर्गों आदि पर अपेक्षित सूक्ष्मता से विचार करने में असमर्थ रहता है । यदि विद्वान अलग अलग विधाओं की एक एक शाखा को चुनकर लोकगीतों की समीक्षा करते तो वह अधिक हितकारी सिद्ध हो सकता था । राजस्थानी लोकगीतों की एक शाखा ''श्रृंगारिक लोकगीतों'' को मैंने उक्त आवश्यकता को ध्यान में रखते हुये ही चुना है ।

राजस्थानी लोकगीतों पर अद्यावधि किये गये कार्य प्राथमिक सूचना की दृष्टि से अथवा मूल जानकारी की दृष्टि से स्तुत्य है । परन्तु जहां तक वैज्ञानिक दृष्टिकोण और साहित्यिक परख का प्रश्न है, यही कहा जायेगा कि अभी पर्याप्त कार्य शेष है । पाश्चात्य देशों में लोक-साहित्य की अन्य विधाओं के साथ लोकगीतों का बड़ी बारीकी और गहनता से विचार किया जा रहा है । लोक-साहित्य के अध्ययन क्षेत्र में परख के विविध आयाम

तय हो चुके हैं । हमारे यहां भी इन नव-विकसित सिद्धान्तों की दृष्टि से लोकगीतों की समालोचना की जानी चाहिए । यह तभी संभव हो सकेगा जब हम अपने अध्ययन का विषय विस्तृत न लेकर सीमित रखेंगे । क्योंकि छोटे और सीमित विषय पर अनेक दृष्टिकोणों से और अपेक्षित गहराई से विचार किया जा सकता है । यही कारण है कि मैंने भी अपने अध्ययन के लिये लोकगीतों के एक वर्ग, श्रृंगारिक लोकगीतों को चुना ।

प्रेम और श्रृंगार को यदि जीवन का मूल-भूत आधार कहा जाय तो अतिशयोक्ति नहीं होगी । मानव जीवन में श्रृंगार और प्रेम का महत्वपूर्ण स्थान है । हमारा पारिवारिक जीवन प्रेम और श्रृंगार के ताने-बाने से ही बुना हुआ है । यदि हमारे जीवन से इन दोनों तत्वों को निकाल दिया जाय तो जीवन, नीरस और सूना हो जायेगा । और तो और हमारे यहां के भक्त कवियों ने भी दाम्पत्य भाव की प्रेमा भक्ति को सर्वोत्कृष्ट भक्ति माना है । प्रेम और श्रृंगार इन दोनों तत्वों से संबंधित अनेक लोकगीत राजस्थान के घर-घर में प्रचलित हैं । मुझे इसकी महती आवश्यकता प्रतीत हुई कि श्रृंगारिक लोकगीतों का एक स्वतन्त्र शोध-प्रबन्ध में विवेचन किया जाय ।

हमारा जीवन दिनोंदिन पाश्चात्य प्रभावों द्वारा त्वरित गति से प्रभावित होकर परिवर्तित हो रहा है । हमारे संस्कार रीति-रिवाज, रहन-सहन, खान-पान और वेश-भूषा के तौर-तरीके निरन्तर बदल रहे हैं । कुछ हठधर्मी लोग परम्परा-निर्वाह का व्यर्थ का दम भर रहे हैं । इन सब परिस्थितियों को देखते हुये मुझे प्रतीत हुआ कि यदि इन सब परंपराओं के साथ साथ लोकगीत भी लुप्त हो गये तो हम अपनी प्राचीन धरोहर से वंचित हो जायेंगे । हमारा वर्तमान अतीत से कट जायेगा । अपने प्राचीन इतिहास की सामग्री को ये लोकगीत अपने कलेवर में संजोये हुये हैं । अत: इनके संग्रह - संकलन की अत्यधिक आवश्यकता है । कुछ लोग ऐसे भी हैं जो इन लोकगीतों और उनमें वर्णित घटनाओं को अच्छी तरह नहीं जान सकते अत: इन लोकगीतों के विवेचन की आवश्यकता है । और

इसी दृष्टि से भी मैंने यह विषय चुना ताकि इन लोकगीतों की समीक्षा के माध्यम से अपनी प्राचीन संस्कृति को सुरक्षित बनाये रखने में सहायक सिद्ध हो सकूं।

ऐतिहासिक दृष्टिकोण से भी राजस्थान के श्रृंगारिक लोकगीतों के अध्ययन की आवश्यकता है। कई ऐसी घटनायें हैं जिन्हें इतिहास में स्थान नहीं मिला पर वे घटनायें इन लोकगीतों के कलेवर में आश्रय पाकर आज भी जीवित हैं। एक ऐसी ही घटना का चित्रण "घुड़लो घूमेला जी घूमेला" नामक गीत में हुआ है। इन लोकगीतों के अध्ययन से विस्मृति के गर्त में गिर रही अनेक घटनाओं को उजागर करके राजस्थान के इतिहास का नव-निर्माण किया जा सकता है।

राजस्थानी लोकगीतों पर कुछ काम किया जा चुका है, लेकिन किसी विद्वान ने साहित्यिक प्रतिमानों की दृष्टि से सम्यक् विवेचन नहीं किया है। "राजस्थान के श्रृंगारिक लोकगीत" इस विषय का शोध-प्रबन्ध के लिये चयन करते समय मेरे ध्यान में यह बात रही है कि यथास्थान इन लोकगीतों का साहित्य शास्त्र के सिद्धान्तों के अनुसार विवेचन किया जाय।

राजस्थान के श्रृंगारिक लोकगीतों में जो मनोवैज्ञानिकता है उस दृष्टि से भी इन गीतों के अध्ययन की आवश्यकता मुझे प्रतीत हुई। 'सवतियाडाह' से संबंधित और 'कलाली' नाम से गाये जाने वाले लोकगीतों का मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोणों से विशेष महत्व है।

राजस्थानी समाज में प्राचीन काल से ही विविध प्रकार के अंधविश्वास और जादू टोने प्रचलित रहे हैं। विशेष रूप से स्त्री समाज इन भावनाओं से आक्रान्त रहा है। इन श्रृंगारिक लोकगीतों के 'कामण' नाम से गाये जाने वाले गीतों में इन्हीं अंधविश्वासों और जादू टोनों का उल्लेख मिलता है। कहने का तात्पर्य यह है कि सामाजिक मान्यताओं की दृष्टि से भी इन लोकगीतों के अध्ययन की आवश्यकता है।

श्रृंगार-भावना मानवी जीवन में सर्वोच्च और सार-रूप मानी गई है । जीवन की विविध रंगी इन्द्रधनुषी भाव-धाराएं मुख्यत: श्रृंगारिक भावनाओं पर ही आधारित हैं । मानवी प्रेम और भक्ति के मूल में श्रृंगार है । परस्पर प्रेमाकर्षण के परिणामस्वरूप समर्पण में ही जीवन की सार्थकता समझी गई है । जीवन की पूर्णता हेतु श्रृंगारिक भावना सरस ही नहीं स्वाभाविक भी है । मानवी जीवन में निहित काम, सौन्दर्य और प्रेम का समन्वित रूप श्रृंगार में ही दिखाई देता है और आदि काल से मानवी जीवन का चक्र इसी श्रृंगार पर आधारित हो कर चल रहा है । जीवन में लौकिक और अलौकिक सम्पूर्ण आनन्द - उल्लास एवं वैभव-विलास श्रृंगार की देन है । श्रृंगारिक जीवन एक रूप में मानवीय संस्कृति का उत्प्रेरक और संचालक है । श्रृंगार रूप में जीवन अपनी सम्पूर्ण मादकता, माधुर्य, सौन्दर्य और सफलता के साथ प्रस्तुत होता है । यही समस्त श्रेय का प्रदाता और भगवत्प्राप्ति का माध्यम कहा गया है ।

मौखिक परम्परागत रूप होने से राजस्थान के श्रृंगारिक लोकगीतों में राजस्थान का मध्यकाल मुँह बोलता सुनाई देता है । चारों ओर से होने वाले आक्रमणों और पारस्परिक युद्धों ने मध्यकालीन राजस्थानी जीवन को एक सैनिक जीवन के रूप में परिणत कर दिया है । मध्यकालीन राजस्थानी पुरूष को, चाहे वह राजा-महाराजा, सामन्त अथवा सामान्य सैनिक हो सदैव युद्ध के लिये तत्पर रहना पड़ता है । शान्तिकाल में भी युद्ध की तैयारियां चलती हैं और साथ ही जीवन को क्षणिक समझते हुए इसके सम्पूर्ण सुखों को शीघ्रातिशीघ्र प्राप्त करने की उमंगमय प्रतिस्पर्द्धा रहती है । कब कहीं युद्ध छिड़ जाय और बुलावा आ जाय, लम्बे समय के लिये दूर दिशा की ओर सैनिक प्रयाण में जाना पड़े, मृत्यु सहज-संभाव्य लगे, जीवन की आशा धूमिल प्रतीत हो, जीवन और मृत्यु के ऊहापोह में ही सैनिक की दिनचर्या व्यतीत हो, फिर वीरतापूर्वक युद्ध करते हुए जीवन-न्यौछावर करना ही सैनिक का लक्ष्य बन जाय और स्वर्ग में सहगमन की कामना से उसकी वीरांगना भी आत्मदाह कर सती हो जाय । जीवन

की ऐसी सामान्य परिस्थितियों में प्रेमी-प्रेमिका समीप रहते जीवन के सहज प्राप्य सुखों का सम्पूर्ण आनन्द अबाध रूप में लेते हैं। संसार का सम्पूर्ण वैभव और सौन्दर्य इन प्रेमियों को अपना ही लगता है। अपनी उमंग में उमड़ते बादल, चमकते चांद - तारे, सावन-भादों की रातों में प्रकाशमान बिजली, बसन्त की मादक मलयानिल, उषा:कालीन और सांझ समय का सूरज, वन-प्रान्तर, चहकते-कलरव करते पक्षी, सूर्य-प्रकाश में दैदीप्यमान रेतीले सुनहले टीबे, लहराते सरोवर, कल-कल निनादी नद-निर्झर, सुगन्ध बिखेरते उपवन, विविध उत्सव-त्यौहार, आकाश चूमते महल-मालिये, संगीत और कविता के स्वर, नृत्य-ताल, पान-पकवान, मनोविनोद-क्रीड़ाएं और वस्त्राभूषण आदि समस्त सुख-साधन प्रेमियों को प्रभावित करते हैं।

संयोग और वियोग दोनों ही अवस्थाओं में इनके प्रति अनूठी अभिव्यक्ति हुई है जिसके दर्शन राजस्थान के श्रृंगारिक लोकगीतों में सहज ही हो जाते हैं। कामवासनाओं की प्रबल तरंगों में बहते प्रेमी - प्रेमिकाएं अन्त:करण से सम्पूर्ण अभिव्यक्ति करते हुए भी पारिवारिक एवं सामाजिक मर्यादाओं का उल्लंघन नहीं करते। राजस्थान के ऐसे श्रृंगारिक लोकगीत साहित्य एवं भाव-जगत के अनमोल रत्न हैं और ये दिनों-दिन दुर्लभ होते जा रहे हैं। ऐसे मूल्यवान मुक्ताओं का अनुसंधान और संचयन कर अध्ययन रूप में मुक्तावली-बद्ध संजोने से हमारा सम्पूर्ण सांस्कृतिक एवं भाव-जगत आलोकित होगा। भारत-भारती सरस्वती की पुनीत सेवा में समर्पण हेतु यह मुक्तावली निश्चय ही महत्वपूर्ण सिद्ध होगी।

---